इकाई २० दक्षिण एशिया में बहुवाद नियंत्रण के समक्ष चुनौतियाँ

इकाई की रूपरेखा

२०.० उद्देश्य

२०.१ प्रस्तावना

२०.२ बहुवाद क्या है?

२०.३ सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्राों में बहुवाद

२०.४ दक्षिण एशियाई स्थिति

२०.४.१ भारत में बहुवाद और लोकतंत्रा

२०.४.२ अन्य देशों में बहुवाद और लोकतंत्रा

२०.५ चुनौती प्रबंधन : एक संकल्पनात्मक उपकरण

२०.६ सारांश

२०.७ कुछ उपयोगी पुस्तकें

२०.८ बोध प्रश्नों के उत्तर

२०.० उद्देश्य

इस इकाई में उन चुनौतियों पर चर्चा की गई है जो बहुवाद पर नियंत्राण पाने में दक्षिण एशिया के देशों के समक्ष खड़ी हैं। इसको पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि:

- बहुवाद का अर्थ;
- दक्षिण एशियाई देशों में बहुवाद;
- बहुवाद की चुनौती का जवाब देने के लिए सैद्धांतिक आदर्शों; तथा
- बहुवाद के समक्ष चुनौती पर काबू पाने के दक्षिण एशियाई देशों के प्रयासों को जान सकें।

२०.१ प्रस्तावना

दक्षिण एशिया में अधिकांश देश बहु सांस्कृतिक एवं बहु राष्ट्रीय हैं। ये देश एकाधिक समाजों, समुदायों अथवा संस्कृतियों से मिलकर बने हैं। चलिए, उन्हें समूह कह कर पुकारते हैं। उनकी अपनी स्वतंत्रा सांस्कृतिक विशेषताएँ तथा वैश्विक दृष्टिकोण हैं। इस प्रकार की अनेकता को कुशल प्रबंधन की आवश्यकता होती है, विशेषरूप से इसलिए कि वह इन विषम समूहों के बीच अपरिहार्य प्रतिस्पर्धा तथा प्राय: संघर्ष की ओर प्रवृत्त करती है। दक्षिण एशिया में राजनीतिक प्रणालियाँ आम तौर पर बहुसंख्यक वर्ग के पक्ष में झुकी हुई हैं। जीवन का एक अन्य दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य यह है कि एक समूह का अन्य समूहों पर संख्यात्मक बाहुल्य है। पाकिस्तान के उदाहरण में ये पंजाबी हैं, भूटान के उदाहरण में ये भूटानी हैं, बांग्लादेश के मामले में ये बंगाली-भाषी मुसलमान हैं और श्री लंका के मामले में ये सिंहली हैं। यह बात अल्पसंख्यक वर्गों के बीच असुरक्षा का भाव जगाती है।

बहुसंख्यक समुदाय आंतरिक रूप से विभाजित भी हैं और उन्हें अनेक ऐसे समूहों व उप-समूहों में बाँटा जा सकता है जो अपने-अपने तरीकों से सत्ता और प्रभाव के लिए स्पर्धा करते हैं। विभिन्न

समूहों के बीच संघर्ष ने इन राष्ट्रीय एकीकरण प्रयासों के सामने समस्याएँ पैदा की हैं, साथ ही राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित किया है। दक्षिण एशियाई राज्यों ने एक राज्य-समर्थित प्रक्रिया के माध्यम से इस प्रकार की प्रतिस्पर्धात्मक एकाधिकता पर नियंत्राण पाने के लिए राजनीतिक रूप से प्रयास किए हैं, जिसे प्राय: 'राष्ट्र-निर्माण' कहा जाता है। ऐसे प्रयासों का मूल दबाव इस बात पर रहा है कि एक प्रबल बोधन को दूसरों की तुलना में विशेषाधिकार प्रदान कर दिया जाये तथा मतभेदों की उपेक्षा की जाये। सभी सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय पहचानें एक अद्वितीय समग्रता में सिमट आयें, यथा 'एक राष्ट्र'। ऐसे स्वांगीकारक राष्ट्र-निर्माण प्रयास असफल रहे हैं क्योंकि 'राष्ट्र' संबंधी इस प्रकार के राज्य-समर्थित विचार सभी समूहों को आकर्षित कर पाने में नाकामयाब रहे हैं। बाहुल्य के सामने चुनौती मूलत: राज्य द्वारा इसी प्रकार के दिग्भ्रमित प्रयासों से ही उत्पन्न होकर आन खड़ी हुई है।

इस प्रकार एक समंजनवादी मन:स्थिति बनाने और एकाधिकता को सांस्कृतिक स्तरों पर मान्यता दिए जाने की आवश्यकता है। राज्य को निष्पक्ष रहना चाहिए और बहुलता एवं विविधता को स्वीकार, समायोजित, रक्षा प्रदान तथा प्रोत्साहन प्रदान करना चाहिए, न कि उन्हें समांगी बनाने एवं आत्मसात करने का प्रयास करता चाहिए। ऐसे अनेक प्रत्ययात्मक आदर्श हैं जो इस प्रकार के बाहुल्य प्रबंधन से वास्ता रखते हैं और हमारे ध्यान व ज्ञान के योग्य हैं। इन राज्यों को एक ऐसे संतुलित राज्य प्राधार की ज़रूरत है जो सभी के लिए समंजनकारी हो और किसी के लिए भी पक्षपातकारी न हो; साथ ही एक राजनीतिक व्यवस्था की ज़रूरत है जो प्रत्येक सदस्य व समूह की नागरिक स्वतंत्राताओं की रक्षा करे। निम्नलिखित चर्चा यहाँ व्यक्त किए गए इन्हीं विचारों की व्याख्या करती है।

२०.२ बहुवाद क्या है?

बहुवाद एक अवधारणा है जो अनेकता को समायोंजित करती है और उसे अपरिहार्य मानती है। एकवाद के समर्थकों से भिन्न, जो बहुविषम पहचानों, संस्कृतियों एवं परम्पराओं की उपेक्षा करते हैं और प्राय: उन्हें एक बनावटी राजनीतिक इकाई में समेटकर रख देने के युक्तिपरक सुविचारित प्रयास करते है, बहुवाद बाहुल्य अर्थात् एकाधिकता को जीवन की एक सच्चाई मानते है। वह इस प्रकार की विविधता को संरक्षित एवं प्रोत्साहन देने का प्रयास करता है, बजाय इसके (अथवा इस कारण से अधिक) कि उनके बीच मतभेदों को संरक्षण एवं प्रोत्साहन दे।

बहुवाद के क्रम-विकास का एक लम्बा इतिहास है। यह मूल रूप से हीगल के नेतृत्व वाली जर्मन आदर्श-वादी विचारधारा के एकतत्त्ववाद के ख़िलाफ़ एक विरोध-प्रदर्शन के रूप में सामने आया। १८३० का दशक आते-आते बहुवाद की धारणा ने दर्शनशास्त्रा, मनोविज्ञान और यहाँ तक कि धर्मशास्त्रा हेतू एक अभिगम के रूप में जड़ें पकड़ना शुरू कर दिया था। तब यह तर्क दिया गया कि बहुवाद की व्याख्या एक मनौवैज्ञानिक, ब्रह्माण्डकीय अथवा सैद्धांन्तिक संदर्भ में की जा सकती है। मनोवैज्ञानिक बहुवाद ने यह दावा किया कि यहाँ अन्य स्वतंत्रा अस्तित्व हैं, आत्मिक सत्त्व अथवा आत्माएँ हैं और यह भी कि उन्हें महज़ एक सार्वत्रिाक सृष्टियात्मक जीवात्मा नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार, ब्रह्माण्डकीय बहुवाद ने तर्कपरक व्यक्तियों द्वारा आवासित विश्वों की बहुलता में विश्वास का समर्थन किया अथवा पिण्डों की विभिन्न व्यवस्थाओं (सौर मण्डल, आकाश गंगा आदि) में विश्वास का। धर्मशास्त्रीय बहुवाद ने बहुदेववाद की संकल्पना का फिर से सूत्रापात किया।

१८७० के दशक तक यूरोपीय दार्शनिकों द्वारा और अधिक तात्विक मंथन के बाद, बहुवाद ने अपनी छाप अन्य क्षेत्रों में भी छोड़ी, जैसे – विभिन्न सामाजिक विज्ञान। जॉन ड्यूवे ने इसे भिन्नताओं एवं विविधता पर ज़ोर दिए जाने की एक प्रवृत्ति के रूप में अलग रखा और कहा कि बहुवाद ने ''इस सिद्धांत को जन्म दिया कि सच्चाई विभिन्न व्यक्तियों की भिन्नता अथवा विविधता में ही निहित है।'' बहुवाद ने व्यवहार मूलक राजनीति के अधिकारक्षेत्रा में अपना रास्ता १९वीं शताब्दी के आरम्भ में बनाया। हैरॉल्ड लास्की, फ्रेडेरिक मैत्लां, जी.डी.एच. कोल, सिडनी एवं तीतरिस वैब तथा अन्य ने संप्रभुता संबंधी अद्वैत सिद्धांत के सार भाग की आलोचना की जो कि राज्य की संप्रभुता को अवियोज्य और अविभाज्य बताते थे। उनके अनुसार, राज्य की सत्ता राजनीतिक अधिकारक्षेत्रा में अन्य

सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक आयकर्त्ताओं के प्रभाव द्वारा सीमाबद्ध है। साथ ही उनका तर्क है कि यह राज्य के ही हित में है कि इन एकाधिक संस्थाओं की सत्ता की स्वीकार करे।

२०.३ सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्रों में बहुवाद

यहाँ हम केवल एक राज्य के भीतर एकाधिक सामाजिक सांस्कृतिक पहचानों तथा विभिन्न एकाधिक समूहों के बीच राजनीति की अन्योन्य क्रिया को एक उत्पादनकारी व लाभकारी तरीके से नियंत्रित किया जाये, इस विषय से ही संबद्ध हैं।

इस प्रकार के 'बहुवाद' को समझने के लिए हमें उस सैद्धांतिक परंपरा और अद्वैतवादियों के अवपीड़न एकतत्त्ववाद के सन्निहित निराकरण को भी समझना पड़ता है जो इस शब्द विशेष के इर्द-गिर्द बनी हुई है। अद्वैतवादियों का कहना है कि सच्चाइयों का एक अनन्य सामञ्जस्य है जिसमें हर चीज़ जो सत्य है, अन्ततः समा जानी चाहिए। इस पुरातन मान्यता ने राष्ट्र-राज्य की धारणा को जन्म दिया, यथा राज्यों के लिए ज़रूरी है कि राजनीति हेतु असरकारी बनने के लिए एक अनन्य राष्ट्र पर आधारित हों। अद्वैतवादियों ने कहा कि केवल एक सजातीय सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था ही राजनीतिक व्यवस्था को कार्यपरक बना सकती है। दूसरी ओर, एक एकाधिक व खण्डित सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश 'राजनीति विभाजनों की अपवृद्धि एवं मतभेदों के तीव्रीकरण' की ओर प्रवृत्त करता है। वैयक्तिक अधिकार संबंधी उदारवादी दृष्टिकोणों के प्रबल समर्थक, जॉन स्टुअर्ट मिल ने कहा: – "एक विभिन्न एवं निजी विशेषताओं से मिलकर बने देश में स्वतंत्रा संस्थाएँ असम्भव प्राय हैं। सह-भावना रहित लोगों के बीच, खासकर यादि वे विभिन्न भाषाएँ पढ़ते बोलते हैं, संयुक्त जनमत जो कि प्रतिनिधि सरकार के कार्य-संचालन के लिए आवश्यक है, हो ही नहीं सकता।'' उदारवादी लोकतंत्रा तथा एकल-राष्ट्रीय राज्य के सफल मिलान संबंधी मिथक सभी उदारवादी चिंतकों को अभिभूत करता है। उनके अनुसार तीसरी दुनिया के समाजों की एकाधिकता एक असह्य विसंगति है। यहाँ तक कि नौरिस दुवर्जर, गैब्रील आमण्ड, लूसियन पाई, सिग्मण्ड न्यूमैन जैसे अनेक उदारवादी राजनीतिक दार्शनिक भी इस बात से सहमत हैं कि प्रभावशाली ढंग से काम करने के लिए किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के लिए एक एकीकृत और केंद्रीकृत सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था (जिसका अर्थ है– अनन्य नृजाजीय-सांस्कृतिक व्यवस्था)की सर्वाधिक बुनियादी ज़रूरत है।

कुछ उदारवादी चिन्तक इस बात पर ज़ोर देते हैं कि बहुवाद की भी अपनी मर्यादाएँ हैं। उदाहरण के लिए, हैरी एक्सटीन बहुवादी समाज को एक 'सखंड विदलनों द्वारा विभाजित समाज' की संज्ञा देते हैं, जहाँ राजनीतिक विभाजन सामाजिक विभेदीकरण व विभाजन की शृंखला का अनुसरण करते हैं। ये विदलन प्रकृति में 'धार्मिक, वैचारिक, भाषाई, क्षेत्राीय, सांस्कृतिक, प्रजातीय अथवा नृजातीय' हो सकते हैं। राजनीतिक दल, स्वैच्छिक संस्थाएँ, हित समूह, संचार-माध्यम तक ऐसी खण्डीय फूटों के इर्द-गिर्द संगठित होने की प्रवृत्ति रखते हैं। उन समूहों संबंधी फुर्निवाल का चरित्रा चित्राण, जो किसी एकाधिक राज्य-व्यवस्था में एक प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं, बड़ा ही रोचक है। उनके अनुसार, एक बहुवादी समाज में हर एक समूह अपने ही धर्म, संस्कृति, भाषा, विचारों तथा तरीकों में रहने का प्रयास करता है। फिर भी यदि 'समुदाय-विशेष के विभिन्न वर्ग पास-पास रहते भी हैं,' 'वे एक ही राजनीतिक इकाई के भीतर पृथक् रूप से रहते हैं'। नितान्त यथातथ्य अर्थ में 'यह (लोगों का) एक घालमेल है, यह सत्य है कि वे मिलते-जुलते हैं परन्तु मिश्रण नहीं बनते'।

ऐसी स्थिति में, किसी एक खण्ड द्वारा आधिपत्य अपिरिहार्य हो जाता है। समूह-संबंध एक ग़ैर-लोकतांत्रिाक तरीके से नियमित हो जाते हैं और एक समूह बाकियों पर प्रभुत्व जमा सकता है। गैब्रील आमण्ड इस प्रकार के बहुवादी समाजों को इस रूप में भी विशिष्टीकृत करते हैं – 'विसम्मत एवं सांस्कृतिक बहुवाद द्वारा अभिलक्षित नियमित समाज' जबकि उनकी तुलना 'सर्वसम्मत एवं सांस्कृतिक सजातीयता द्वारा अभिलक्षित एकीकृत समाजों' के साथ की जा रही हो।

२०.४ दक्षिण एशियाई स्थिति

दक्षिण एशिया का लक्षण-वर्णन प्राय: कुछ लोगों द्वारा संस्कृतियों एवं सम्यताओं के प्रतिस्पर्धारत रहने एवं संघर्षरत रहने से संबंधित गलत पात्रा के रूप में, तो दूसरे लोगों द्वारा एक क्वथन-पात्रा के रूप में किया गया है। इस भूभाग में स्थित देश त्रा्रुटिरहित रूप से बहु-राष्ट्रीय की संज्ञा देते हैं।

मालदीव को छोड़कर बाकी सभी देशों में एक समृद्ध भाषायी विविधता पायी जाती है। पुन:, वैविध्य विषयक धर्म के लिहाज से, दक्षिण एशिया में विश्व के सभी मुख्य धर्म अपनाये जाते हैं। अधिकांश राज्यों में धार्मिक विविधता की तिरछी काट करता जाति-कारक भी विद्यमान है। धार्मिक पहचानों एवं भू-सांस्कृतिक भिन्नताओं के आधार पर दूसरे गलत दर्रे भी हैं। उक्त भूभाग स्थित मुख्य देशों में इन तत्त्वों को सामने लाना ही उचित होगा।

२०.४.१ भारत में बहुवाद और लोकतंत्र

भारत विश्व के मुख्य धर्मों का गढ़ है। परन्तु हिन्दू और मुस्लिम देश में धार्मिक-सांस्कृतिक आधार शिला को विभाजित करते हैं। इन दोनों सम्प्रदायों के बीच संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा, मूल रूप से औपनिवेशिक काल में अभिजात्य-जनित राजनीति द्वारा प्रारंभ, ने ही ब्रिटिश औपनिवेशक भारत प्रवृत्त किया। उनमें से एक, पाकिस्तान, तदोपरांत भाषा के आधार पर विभक्त हो गया। पूर्वी पाकिस्तान के बंगाली-भाषी मुसलमान बंगलादेश बनाने के लिए बँट गए। यह एकमात्रा उदाहरण ही शायद उन तिरछी काट करती धार्मिक-सांस्कृतिक संवेदनाओं को सबसे अच्छी तरह चित्रित करता है जो दक्षिण एशियाई राजनीति सच्चाई को परिभाषित करती हैं।

भारत में, धर्म के आधार पर विभाजन के बाव़जूद, अभिजात वर्ग ने धर्मनिरपेक्ष, संसदीय लोकतंत्रा कायम करना सुनिश्चित किया जिसने क्रम विकास और धैर्य के लिए आवश्यक अनुकरणीय क्षमता दर्शायी है। तथापि, स्वातंत्रा्योत्तर भारत में, विडम्बना ही है कि लोकतांत्रिाक सरकार प्रणाली, खासकर व्यवस्था विधान चुनने के चुनावी तरीके का सहारा लेकर, सभी संभव समूह निष्ठाओं, यथा – जाति, वर्ग, समुदाय, क्षेत्रा, धर्म व भाषा के आधार पर ही राजनीतिक संघटन में सक्षम हुई है। इसने परिधीय पहचानों व समूहों का गहरा राजनीतिकरण किया है और राज्य-व्यवस्था को खंडित किया है। एक अन्य स्तर पर हिन्दू धर्म की एकीकारी अपील ने अंतत: सांप्रदायिक एवं अंतत: धार्मिक विभाजक को पाटने का प्रयास किया है। इसने, बदले में, राज्य-व्यवस्था का संप्रदायीकरण किया है और राज्य में साम्प्रदायिक संघर्ष एवं अशांत राजनीतिक व्यवस्था के रूप में बदला है।

भारतीय संघ के भीतर स्वायत्त राज्यों के गठन के लिए क्षेत्रीय माँगें भी उठी हैं। बुन्देल खण्ड, विदर्भ, (पूर्वी महाराष्ट्र), विन्ध्य प्रदेश (उत्तरी मध्य प्रदेश), तेलंगाना (उत्तर-पश्चिमी आन्ध्र प्रदेश) ऐसे ही उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। किसी न किसी मापदण्ड को ध्यान में रखकर ही अतीत में भारतीय संघ के भीतर प्रान्तों को पुनर्गठित किया गया। इसके अलावा, देश के कुछ भागों में पृथकतावादी आन्दोलन भी चल रहे हैं, जैसे उत्तर-पूर्व, जम्मू-कश्मीर तथा पंजाब में।

इस प्रकार की fissiparous प्रवृत्तियों का मुख्य कारण लोकतंत्रा का प्रकार्यात्मकता वैकल्प तथा उद्धार करने में राज्य की घटती क्षमता रहा है। कश्मीर में उग्रवाद पनपने का मूल कारण क्षेत्रीय अभिजात वर्ग द्वारा लोकतांत्रिाक प्रक्रिया में इच्छानुकूल परिवर्तन केन्द्रीय प्रशासन द्वारा इस प्रकार की दृश्यघटना की निकृष्ट और अविवेकपूर्ण अनदेखी ही था। यही बात उत्तर-पूर्वी राज्यों के विषय में भी सत्य है। इन राज्यों में मोहभंग का मुख्य कारण यह अवबोधन रहा है कि वहाँ के लोगों के साथ भेदभाव बरता गया है। स्थानीय स्तर पर शासन संकट ने एक पृथक्तावादी अभिजात वर्ग को परिधि पर ला पटका है। प्रतिरोध के सम्पूर्ण तानेबाने में बल-प्रयोग शुरू होने से भारतीय राज्य के लिए इतनी समस्याएँ पैदा कर दी गई हैं कि उतनी हल भी नहीं की गई हैं। इसने बदले में दक्षिण-पंथ और उग्रवादी राजनीति को जन्म दिया है।

हाल के वर्षों में, राजनीति में हिन्दू दक्षिण पंथ की अप्रत्याशित अधिकार-माँग कुछ निश्चित स्तरों पर हो रहे राजनीतिक परिवर्तनों की प्रकृति के एक और संकेतक के रूप में उभरी है। इसने अन्वेषकों को यह देखने के लिए मजबूर किया है कि भारत में एक प्राधान्यपूर्ण हिन्दू बहुमतवादी राजनीति एकरूपता थोपने का प्रयास करेगी। इसी के साथ, इस प्रकार की अधिकार-माँग के बावजूद धार्मिक विभाजक टिकाऊ राजनीतिक निर्वाचन क्षेत्राों में क्रम-विकसित हो गए हैं। यथा – यादव, भूमिहार, दलित अथवा बहुजन। वाम-पंथी अतिवादी निर्वाचन क्षेत्रा – नक्सल, माओ-राजनीति के क्षितिज पर बहरहाल एक और राजनीतिक वर्ग के रूप में धीरे-धीरे सर उठा रहा है। यह पुन: अपना संबंध मुख्य रूप से लोकतंत्रा के प्रकार्यात्मक विकल्प और जनता के एक अल्पसंभावित वर्ग की शिकायतों को दूर करने में राज्य की अक्षमता से जोड़ता है।

बोध प्रश्न १

टिप्पणी: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर के लिए इकाई-अंत में संकेत देखें।

१) बहुवाद से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

२) दक्षिण एशिया में बहुवाद की चुनौतियाँ क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

महाधिक्य नियंत्रण कैसे: स्वांगीकरण एवं समंजन

भारत अप्रत्यक्ष रूप से अनेकता में एकता पर जोर देते हुए उस सांस्कृतिक एकता पर बल देता है जिसने विविध सांस्कृतिक समूहों को एक सूत्रा में बाँधने के रूप में काम किया। परन्तु यह सांस्कृतिक अथवा साम्प्रदायिक अधिस्वर रखती थी। अखण्ड भारत (एकीकृत भारत) की कल्पना जो उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैला हो, ऐसे पौराणिक कल्पना-प्रधान अतीत से ही जन्मी थी जिसमें सुस्पष्ट हिन्दू प्रतिक्रिया ही थी। यह सत्य है कि इस प्रकार की एकता की परिकल्पना निरापद रूप से जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व वाले धर्मनिरपेक्ष कांग्रेसी नेताओं द्वारा भू-सांस्कृतिक पहलू से ही की गई थी। परन्तु यह भी सत्य है कि वे वाग व्यवहार जो कि लोग इस प्रकार की एकता के प्रदर्शन में करते थे, हिन्दू पुराणों एवं अन्य धार्मिक मूलग्रंथों से ही लिए गए थे। ऐसे पुनरावेशित राष्ट्र के उत्साही राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने इस प्रकार की एकता की प्राचीनता सत्यापित करने के लिए इतिहास में अस्वाभाविक एवं पूर्वजों के विशिष्टता वर्णन का सहारा लिया, ताकि इसे स्वाभाविक और शाश्वत रूप में प्रस्तुत किया जा सके। यूरोप के १६४८-उपरांत वैस्टफ़ैलियन राज्यों की तर्ज़ पर एक राष्ट्र-राज्य बनाये जाने के प्रलोभन ने और ख़ास

कर गैरीबाल्डी, मैज़िनी, कैवूर, विस्मार्क जैसे राष्ट्रवादियों में लेखों ने, जर्मन व इटैलियन राष्ट्र को एकीकृत किए जाने के प्रयासों ने उन्हें एक अनैतिहासिक अतीत में इस प्रकार की राष्ट्रीयता का मूल तलाशने दूर अतीत में भेज दिया। हाल के मध्यकालीन इतिहास में मुस्लिम शासकों द्वारा लायी गई प्रशासनिक एकता को या तो अनदेखा किया गया या फिर पूरी तरह भुला ही दिया गया।

इस प्रकार के राष्ट्र के निर्माण के उत्साह ने विषम समूहों को एकजुट करने के लिए अभिजात वर्ग में एक प्रतिक्रियात्मक ललक पैदा की। उन्होंने अधिकांशत: स्वांगीकारक मुद्रा अपनायी, जिसमें अंत:-सामुदायिक भिन्नताओं तक को छुपाया गया था। इस बात को स्वाभाविक और पूरी तरह न्यायसंगत समझा गया कि उनसे उम्मीद की जाये कि एक केन्द्रीकृत, आधिपत्यपूर्ण औरConstruct के पक्ष में अपने विभेदकारी अभिलक्षणों को छुपायें। अनेकता को समायोजित करने के लिए अभिजात वर्ग के स्तर पर प्रयासों का अभाव था; उन्होंने अपने राष्ट्र-निर्माण प्रयासों की व्याख्या प्राधान्यपूर्ण तरीकों से की। परन्तु धीरे-धीरे चूँकि लोकतंत्रा पूर्ण विकसित हो चुका है, आभिजात्यों द्वारा समंजनकारी मुद्रा अपनाये जाने के सकारात्मक संकेत मिले हैं। तदनुसार हम प्रगतिशील राष्ट्रवादी नेतृत्व को स्वतंत्राताप्राप्ति के आरंभिक वर्षों में किन्हीं भी अनिश्चित अर्थों में भाषाई वैविध्य को समायोजित नहीं कर पाते हैं। यहाँ तक कि नृजातीय-सांस्कृतिक व क्षेत्राीय भिन्नताएँ भी उत्तरोत्तर समायोजित की गई हैं, जैसा कि झारखण्ड, छत्तीसगढ़, आदि की माँगों के उदाहरणों में देखा गया है। तथापि, इस प्रकार की समंजनकारी मुद्रा कुछ प्रकार की विविधताओं को छोड़ देती है और भारतीय राज्य-व्यवस्था को कुछ और वक्त लगेगा कि वह उसे तर्कसंगत परिणति तक पहुँचा सके।

२०.४.२ अन्य देशों में बहुवाद और लोकतंत्र

भूभाग के अन्य देशों में लोकतंत्रा को अभी तक निर्विघ्न राह नहीं मिल पायी है। पाकिस्तान में, उदाहरण के लिए, सेना-नौकरशाही संघ ने अवसरवादी राजनीतिज्ञों के साथ मिलकर अपनी संप्रभु सत्ता के अधिकांश भाग देश पर शासन किया है। शासनकारी अभिजात वर्ग समय-समय पर वैधता के संकट से ग्रस्त रहा है। उदाहरण के लिए, नवाज़ शरीफ जिन्हें भारी जनादेश के साथ सत्ता में चुनकर लाया गया था, सेना-प्रमुख परवेज़ मुशर्रफ द्वारा गद्दी से उतार दिये गये। सेना को कार्रवाई करने के लिए मुख्य कारण आमतौर पर नवाज़ शरीफ द्वारा निरंकुश सत्ता की अलोकतांत्रिक अधिकार-माँग बताया जाता है। सेना ने अपने ही तरीके से तिकड़मपूर्ण जनमत-संग्रह, जैसे-तैसे भाग लिए गए स्थानीय-निकाय चुनावों और यहाँ तक कि एक मंच-संचालित राष्ट्रीय चुनाव के माध्यम से सार्वजनिक वैधता हासिल करने का प्रयास किया है। उनके द्वारा weild सत्ता के लिहाज से, मुशर्रफ व उनके सत्तासीन घनिष्ठ-लोकतंत्रावादियों के नेतृत्व वाले सैन्य-शासन तथा उन सियासी ताकतों के बीच, जिनको उसने चुनावी कलह से बाहर ही कर दिया है, एक असमान प्रतिस्पर्धा चलती रही है।

यहाँ यह बात जोड़ना भी अत्यावश्यक है कि पाकिस्तान में अंतत:-इस्लामिक महाधिकता हाल के वर्षों में एक फ़ौजी तरीके से सामने आयी है। यह सुन्नियों के बीच सभी के लिए खुली लड़ाई रही है और सुन्नियों के भीतर देवबन्दियों व बरेलवियों, यानी शियाओं तथा अहमदियों के बीच। बढ़ते फ़ौजीकरण ने असरकारी रूप से लोकतंत्रा के दरवाज़े बंद कर दिए हैं। पाकिस्तान दमित राष्ट्रीयताओं (PONM) यथा बहुसंख्यक पंजाबियों के सामने मुकाबले को खड़े बलूचियों, सिंधियों, पठानों व सरैकियों के संयोजन, के रूप में पाकिस्तान का बहुवादी चेहरा भी धीरे-धीरे वहाँ एक राजनीतिक हकीकत के रूप में सामने आ रहा है।

श्रीलंका में बहुसंख्यक सिंहलियों ने पचास के दशक से ही शासन-व्यवस्था से प्रभावशाली अल्पसंख्यक तमिलों को असरकारी ढंग से बाहर कर रखा है और इसने अस्सी के दशक से इस द्वीप को गृहयुद्ध की ओर प्रवृत्त किया है। किसी प्रभावी और प्रामाणिक संघीय, लोकतांत्रिक व्यवस्था के अभाव में संकट का कोई भी कारगर उपाय कभी संभव नहीं होगा जैसा कि नार्वेजियनों की मध्यस्थता में इन दोनों पक्षों के बीच वार्ताओं की विफलता ने प्रचुरता से दर्शाया है।

नेपाल में भी लोकतंत्रा बड़े विकृत तरीके से विकसित हुआ है जहाँ अभिजात वर्गों ने राजतंत्रा से लोकतंत्रा में आने के समय से ही अपनी लड़ाइयों द्वारा लोकतंत्रा की नितान्त व्यवस्था को शर्मिन्दा किया है। लोकतांत्रिाक व्यवस्था की विफलता और ठीक ढंग से काम न करने की वजह ने परिवृत्त में माओवादियों को सर उठाने दिया है। राज्य शक्तियाँ जमकर लड़ाई लड़ रही हैं और फिर भी तब तक कोई हल नहीं निकलेगा जब तक कि शासनकारी राजनीतिक अभिजात वर्ग माओवादियों को अनुकूल करने और उन्हें अपनी माँगें राज्य के सामने लोकतांत्रिाक तरीके से रखने देने में अक्लमंदी नहीं दिखाता।

बांग्लादेश में समाज के चरम आपराधीकरण एवं गहन राजनीतिकरण ने उसे दो विरोधी खेमों में बाँट दिया है: मुक्तिवादी अर्थात् शेख मुजीबुर्रहमान के अनुयायी, और मुक्ति-विरोधवादी जो कि अब इस्लामवादी दक्षिणपंथियों के साथ हैं। परवर्ती ने एक समय बांग्लादेश बनाये जाने का विरोध किया था। चुनावी भाषा में, बांग्लादेश में लोकतंत्रा अपने आप तेजी से स्थापित हो रहा है परन्तु बड़ी तेजी से बढ़ती जनसंख्या और निरक्षरता एवं ग़रीबी के बढ़ते निर्देशांकों के साथ, बांग्लादेश में लोकतंत्रा की यथार्थ विचारधारा को जड़ पकड़ने में वर्षों लग सकते हैं।

दक्षिण एशिया में राजनीतिक स्थिति पर एक सरसरी दृष्टि दर्शाती है कि लोकतंत्रा प्रणाली में, जो कि इस भूभाग स्थित देशों में विभिन्न तरीकों से अपनाई गई है, भारत के उदाहरण में शायद कुछ अपवाद के साथ, अभी तक दयनीय रूप से उन मानकों की कमी है जो उन्होंने अपने ऊपर लागू किए हैं। एक लोकतांत्रिाक रीति से अपने बीच महाधिक्य से निबटने के लिए उनकी अक्षमता के मूल कारणों का एक संकल्पनात्मक दृष्टि से विश्लेषण नीचे किया गया है।

महाधिक्य नियंत्रण कैसे: दमनकारी राज्य, केन्द्रीकारी प्रतिक्रियाएँ जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है, दक्षिण एशिया में भारत के अलावा अन्य देशों ने लोकतंत्रा का एक विकृत आदर्श अपनाया है। इन सभी राज्यों में एक आधिपात्यपूर्ण 'नृजातीय व्यवस्था' ने जन्म लिया है जो अपने विशेषाधिकारों की ईर्ष्यापूर्ण तरीके से रक्षा करता है। पाकिस्तान में यह अगर पंजाबी अभिजात वर्ग है, तो श्रीलंका में यह सिंहली अभिजात वर्ग है। पाकिस्तान में पंजाबी अभिजात वर्ग ने किन्हीं तरीकों से पश्तूं अभिजात वर्ग को अपने अनुकूल कर लिया है, परन्तु सिंधी और बलूची अभिजात वर्गों को राजनीतिक सत्ता के क्षेत्राधिकार से दूर रखा गया है। श्रीलंका में सिंहली अभिजात वर्ग ने, जिन्हें विडम्बनापूर्ण रूप से लोकतंत्रा और गिनती के खेल से सत्ता प्राप्त है, तमिलों को पूरी तरह हाशिए पर ही धकेल दिया है। इसी प्रकार, बांग्लादेश राज्य की इस्लामिक प्रतिक्रियाएँ बिल्कुल स्पष्ट रही हैं। यह तथ्य कि बांग्लादेश से हिन्दुओं का निरन्तर बहिर्वाह होता रहा है, इस बात को सिद्ध करता है कि बांग्लादेश में राज्य ने एक ऐसे आधिपत्य को समेकित किया है जो अन्य समुदायों के प्रति असहिष्णु है। यह बात उस तरीके से भी सामने आती है जिससे कि बांग्लादेशी अभिजात वर्ग ने बौद्ध चकमाओं के साथ व्यवहार किया।

एकाधिक पहचानों द्वारा अधिकार-माँग के मामलों को निबटाने में राज्य ने एक दमनकारी शैली अपनायी है। पाकिस्तान राज्य अपने इतिहास के आरम्भिक वर्षों में बंगाली-भाषी पूर्वी पाकिस्तान जन-नेतृत्व तथा पश्चिमी पाकिस्तान की पंजाबी-प्रधान राजनीति, दफ्तरशाही एवं सैन्य नेतृत्व के बीच एक गंभीर सत्ता संघर्ष में फँसा देखा गया। अधिसंख्यक बंगालियों को दबाने की चेष्टा में पंजाबी-प्रधान पाकिस्तान नेतृत्व उन विषम राष्ट्रीयताओं के बीच एक बलात् एकता ले आया जिनके पास इस्लाम को छोड़कर, अपने बीच एकता का कोई स्पष्ट सर्वमान्य सूत्रा ही नहीं था। गत वर्षों में शासक अभिजात वर्ग द्वारा एक बनावटी एकता का थोपा गया अर्थ लगातार प्रबलित किया जा रहा है। यहाँ तक कि भुट्टो जैसे एक अन्यथा सौम्य और पश्चिमी रंग में ढले राजनेता को, जिसने पाकिस्तान को उसका सर्वप्रथम सुविचारित संविधान दिया, उन दमनकारी उपायों को फिर से अपनाते देखा गया जो पाकिस्तानी सेना ने पूर्वी पाकिस्तान में प्रयोग किए थे। उसने उसी सेना को तलब किया जो १९७३-७४ के दौरान बलूचियों का मुँह बंद करने के लिए हुए विभाजन के आघात से उबर रही थी। हाल में बलूची अधिकार-माँग और पाकिस्तान दमित राष्ट्र संघ(Oppressed Nations

of Pakistan) द्वारा सहमत आन्दोलन के दृष्टिकोण से, सैन्य प्रशासन ने अब तक आत्म-संयम दर्शाया है। परन्तु नृजातीय-सांस्कृतिक मतभेदों को नियंत्रित किए जाने की शैली अभी तक मुख्य रूप से दमनकारी बनी हुई है। कभी-कभी दक्षिण एशिया में सत्ता अभिजात वर्ग ने विसम्मत समूहों को भी समायोजित करने का प्रयास किया है।

२०.५ चुनौती प्रबंध: एक संकल्पनात्मक उपकरण

राजनीति का सार है – मतभेद नियंत्राण। राजनीति भलीभाँति बनाए गए सिद्धांतों पर काम करती है, जिनके इर्द-गिर्द सर्वसम्मति या तो साहजिक होती है या फिर बनावटी। बहुवादी समाजों के साथ खास दिक्कत यह है कि वे भिन्न दिशा में जाता रास्ता ही है जिससे आम राजनीति-सिद्धांतों तक पहुँचा जाता है, उनकी व्याख्या की जाती है और उनको अमल में लाया जाता है। यह प्राय: राजनैतिक प्रक्रियाओं विषयक प्रतिकूल और परस्पर विरोधी अवधारणाओं तथा हितों के अपरिहार्य संघर्ष की ओर प्रवृत्त करता है। इस परिदृश्य में लोकतंत्रा के आने के साथ ही बहुमत शासन के लिए लोकतांत्रिाक संवेदना विषम समूहों के बीच कृत्रिाम राजनीतिक बंधन में स्पष्ट हो जाती है और इस समयानुकूल संधि की प्रकृति समय-समय पर बदलती है। यह बात राजनीति की प्रकृति पर प्रभाव डालती है और लोकतंत्रा को महज चुनावतंत्रा बनाकर रख देती है। कुछ अन्य मामलों में, जैसा कि स्मिथ ने उल्लेख किया है, जहाँ समाज गहरे विभाजित और विखण्डित होता है, एक संख्यात्मक बहुमत समूह (बहुमत आधिपत्य) द्वारा शासन, यदि ऐसा समूह अपने-आप में विभाजित हो सकता हो फिर भी, अपरिहार्य हो जाता है। ऐसे बहुवादी समाज राजनीति सिद्धांतियों के समक्ष वस्तुत: एक सच्ची चुनौती पेश करते हैं।

पश्चिमी जगत् में समस्त अनुभववादी एवं बुद्धिवादी विचारधााओं ने, जो राजनीतिक विकास, एवं अल्पविकसित देशों में समाजों के लोकतंत्रीकरण के मुद्दों पर काम कर रही हैं, बहुवादी समाजों में कार्यरत राजनीतिक प्रणालियों के विश्लेषण का प्रयास किया है और सच्चे लोकतंत्रा से विपथनों एवं विचलनों के बावजूद उनसे सबक लिया है। ऐसे समाजों के लिए जो नुस्खे उनके पास हैं, उन्हें मूलरूप से दो प्रतिमानों में रखकर विकसित किया जा सकता है : उदारवादी तथा मित्रातावादी। उदारवादी प्रतिमान इन बातों पर जोर देता है:

i) सभी नागरिकों के बीच समूह-संबंधों के होने के बावज़ूद, उनकी नागरिक समानता

ii) संवैधानिक साधनों के माध्यम से नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों की रक्षा

iii) नृजातीय विषयों में राज्य की तटस्थता

iv) निजी क्षेत्रा में राज्यक्षेत्रा का अल्पीकरण

v) राजनीतिक प्रक्रिया में समूहों का सहभागितापूर्ण समावेश

हालाँकि उदारवादी प्रतिमान, समूह आकर्षण को कम करने में विफल रहा है। व्यक्तिवाद पर उसका ज़ोर सामुदायिक संबंध की शक्ति को क्षीण करने और यह सुनिश्चित करने का प्रयास करता है कि राजशासन में असली राजनीतिक परमाणु व्यक्ति ही है न कि समुदाय अथवा समूह। इसके अतिरिक्त, बहुवादी समाजों में उदारवादी लोकतंत्रा समूहों के भीतर आभिजात्य गठन प्रक्रिया में मदद करता है और समूह बंधुत्व प्रक्रिया को समेकित करता है। इस प्रकार समूह उत्तरोत्तर महत्त्वपूर्ण और राजनैतिक रूप से प्रतिस्पर्धात्मक बन जाते हैं। महाधिक्य के तथ्यों को छुपाने के प्रयास में उदारवादी लोकतंत्रा ऐसी बहुवादी पहचानों की एक स्थायी अपील का शिकार हो जाता है जिसके आसपास अधिकतर राजनीतिक लामबंदी जन्म ले लेती है।

मित्रातात्मक प्रतिमान, जिसका समर्थन अरेन्द्र लिज़र्फ़ा ने किया है, उस उदारवादी प्रतिमान की अन्तर्जात कमजोरियों को ध्यानार्थ लेता है जो नृजातीय विविधता की हकीकत को छुपाने को प्रयास

करता है। यह नृजातीय-सांस्कृतिक विविधताओं को समायोजित करता है और उन्हें राजनीति के क्षेत्रा में न्यायसंगत स्थान प्रदान करता है। यह समूह हितों को मान्यता देता है। साथ ही, यह वैयक्तिक अधिकारों एवं स्वतंत्राताओं पर एक बढ़ौती भी रखता है। एक मित्रातावादी राजनीतिक व्यवस्था के मुख्य तत्त्व हैं :

i) सत्ता-बाँट से जुड़े मामलों की पतवार के सहारे एक विशाल राजनीतिक गठबंधन। बहुवादी समाजों में, एक नहीं अनेक बार देखने में आता है कि विभिन्न समूहों के नेतागण प्राय: एक सहकारी तरीके से सत्ता प्रयोग के लिए एक साथ आ खड़े होते हैं जबकि द्वि-दलीय प्रणालियों में, मुख्य रूप से सजातीय राज्यों को लिए जाने पर, नेतागण शत्रुाता शैली अपनाते हैं। मित्रातात्मक नेतृत्व शैली इस प्रकार एक हो जाने की प्रवृत्ति रखती है। दक्षिण एशियाई राजनीति में विशाल गठबंधन का एक निकट उदाहरण है – भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी। तथापि, लिजफ़र्ट १९९० के दशक से कांग्रेस के पतन और भा.ज.पा. के उत्थान के आलोक में उससे संबंधित मैत्रीवाद पर अपने विचारों को संशोधित कर रहे हैं।

ii) समायोजनवादी समाधान के प्रति वचनबद्धता। नेतागण सहज ही इस कारण से कि वे कलहकारी मन:स्थिति से बचे रहें, साथ आ जुटते हैं और विपरीत एवं विवादास्पद दृष्टिकोणों को समंजित करने का प्रयास करते हैं।

iii) सखंड स्वायत्तता और ग़ैर-राज्यक्षेत्रीय संघवाद। विभिन्न समूहों को एक-दूसरे से स्वतंत्रा काम करने की इजाज़त होती है और उनकी स्वायत्तता की गारण्टी लिखित और औपचारिक विधिसंगत साधनों द्वारा दी जाती है। इन समूहों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार भलीभाँति मान्यता और सुरक्षा प्राप्त होते हैं। चूँकि हो सकता है कि ये समूह सुस्पष्ट राज्यक्षेत्रीय सीमाओं में समूहित न हों और फिर भी केन्द्रीय सत्ता-आधार की बुनियादी इकाइयों का निर्माण करते हों, इन समूहों के बीच इस प्रकार के सत्ता वितरण को ग़ैर-राज्यक्षेत्रीय संघवाद कहा जा सकताहै।

iv) परस्पर प्रतिषेधाधिकार। सभी समूहों के लिए परस्पर 'वीटो' अर्थात् प्रतिषेधाधिकार का प्रावधान एक मित्रातात्मक व्यवस्था में सत्ता-प्रयोग को बहुत ही रोचक बना देता है। यह इस बात की गारण्टी है कि ऐसा कोई भी निर्णय जो किसी समूह के व्यापक हितों के प्रति हानिकारक हो, इस प्रकार की व्यवस्था में स्वीकार्य नहीं होगा। जॉन सी. कैल्हों इस व्यवस्था को 'समवर्ती बहुसंख्यक' कहते हैं जो अपने आप में प्रत्येक अल्पसंख्यक समूह को अपनी रक्षा स्वयं करने की शक्ति प्रदान करता है और किसी भी संभावित दमनकारी बहुसंख्यक वर्ग द्वारा मतों की गिनती में हरा देने का भय दूर करता है।

v) राजनीतिक विच्छेद का अधिकार (संबंध-विच्छेद और विभाजन)। सैम्युअल पी. हन्टिगटन ने एक बार टिप्पणी की कि राजनैतिक विच्छेद उन्नीसवीं शती में सामाजिक व्यवस्था की पहचान था। मित्रातावादियों की ही भाँति, उन्होंने तर्क दिया कि अल्पसंख्यक समूहों को इस अधिकार की आवश्यकता है कि वे अपने हितों के रक्षार्थ, जब भी उन्हें ऐसा आवश्यक लगे, प्रबल समूह से विलग हो सकें।

vi) सुविचारित समाधान पर पहुँचने के लिए सत्ता अभिजात-वर्गों की दुष्प्रवृत्ति। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया, एकाधिक समाज की अपकेन्द्री प्रवृत्ति उस समूह-नेतृत्व की सहकारी प्रवृत्ति द्वारा प्रतिसंतुलितकी जाती हैजो हमेशा लोकतंत्रा के मित्रात्मक रूप मेंगठबंधनों कोढूँढते रहते हैं।

दक्षिण एशिया के राज्यों में लोकतंत्रा को सफल बनाने के लिए विश्वास और सामंजस्य का माहौल बनाया जाना अति आवश्यक है। दक्षिण एशियाई राज्यों के बीच अन्तर्सांस्कृतिक संबंध विकास और सहयोग वाले एक क्षेत्रीय प्रतिमान को संभव बनायें। इस भूभाग में राज्यों को राज्यों के ही रूप में और विकसित होना होगा, न कि किसी एक समुदाय-विशेष अथवा चुनिन्दा समुदायों के किसी समूह के प्रतिनिधि के रूप में। आन्तरिक स्तर पर, उन्हें न्याय एवं निष्पक्ष व्यवहार सुनिश्चित करना होगा

और राज्य के मामलों में लोगों की राजनीतिक भागीदारी को करना होगा। इन सभी देशों में राजनीतिक अभिजात वर्ग को काफी परिपक्वता दर्शानी होगी कि अन्य समूहों के हितों को समायोजित कर सकें और ऐसे समूहों को अपने ढंग से विकसित होने में मदद कर सकें। महाधिक्य केवल तब सफल होगा जब मतभेदों को एक निष्पक्ष, खुले, स्वतंत्रा और ग़ैर-विभेदकारी माहौल में अपने आप दूर होने दिया जाएगा।

बोध प्रश्न २

टिप्पणी: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर के लिए इकाई-अंत में संकेत देखें।

१) दक्षिण एशियाई देशों में बहुवाद की चुनौतियों पर किस प्रकार नियंत्राण किया गया है?

.....

.....

.....

.....

.....

२) वे सैद्धांतिक आदर्श क्या हैं जिन्हें दक्षिण एशिया में बहुवाद की चुनौतियों के प्रबंधन में व्यवहार किया जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

२०.६ सारांश

किसी समाज में बहुवाद संस्कृति, भाषा रीति-रिवाजों, परम्पराओं आदि के लिहाज से भिन्नताओं के होने को दर्शाता है। इन भिन्नताओं को विविधताओं के रूप में भी जाना जाता है। बहरहाल परवर्ती महज राजनीतिक अधिकारों वाले विविध समूहों के वज़ूद को दर्शाता है। दक्षिण एशिया के सभी देश बहुवादी हैं। यहाँ भिन्न-भिन्न संस्कृतियों भाषाओं, रीति-रिवाजों, नृजातीयता, आदि वाले अनेक समूह हैं। इन समूहों के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध भी हैं और कलहकारी संबंध भी। दक्षिण एशिया में नृजातीय संघर्ष। उपद्रव, स्वायत्तता आन्दोलन, आदि। स्वायत्तता आन्दोलन राष्ट्र-राज्य की संप्रभुता तक को धमकी देते हैं; नृजातीय संघर्ष आम व्यवस्था पर ख़तरा बनते हैं। ये बातें दक्षिण एशियाई देशों में बहुवाद के समक्ष चुनौती पेश करती है। बहुवाद की चुनौतियों के नियंत्राण के लिए दो प्रतिमान उपलब्ध हैं – उदारवादी और मित्रातात्मक। दक्षिण एशिया में राज्यों ने बहुवाद को मिल रही चुनौतियों को विभिन्न समूहों के समंजन एवं अवपीड़न द्वारा काबू करने का व्यापक रूप से प्रयास किया है।

२०.७ कुछ उपयोगी पुस्तकें

बोस, सुगत एवं आएशा जलाल (सं.) (१९९८), *नैशनलिज़्म, डिमॉक्रसी एण्ड डिवैलॅपमण्ट: स्टेट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया,* ऑक्सफॉर्ड, यूनिवर्सिटि प्रैस, नई दिल्ली

कॉर्नैल (२००२), *''द प्रोग्रैस ऑफ प्लुरलिज़्म एण्ड द टग ऑफ़ वॉर ऑफ सिविलाइज़ेशन्स''* पर्सैटशन्स जून-अगस्त

डाल, रॉबर्ट, ए. (१९७१), *पॉलिआर्कि: पार्टिसिपेशन एण्ड ॲपोज़ीशन,*मेल यूनिवर्सिटि प्रैस, न्यू हैवन

ग्वोस्देव, निकोला (२००२), *''मैनिजिंग पपूरलिज़्म'', वर्ल्ड पॉलिसी जर्नल,* शीलकाल

जलाल, आएशा (१९९५), *डिमॉक्रसी एण्ड ॲथॉरिटेरियअनिज़्म इन साउथ एशिया: ए कॉम्पैरिटिव एण्ड हिस्टॉरिकल पर्सपैक्टिव,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटि प्रैस, कैम्ब्रिज

लिज़फ़र्ट, आरेन्द्र (१९८९), *डिमॉक्रसी इन प्लूरल सोसाइटीज़: ए कॉम्पैरेटिव एक्सप्लोरशन,*बम्बई, पॉपुलर प्रकाशन

ऊमन, टी. के. (२००२), *प्लूरलिज़्म, इक्वलिटि एण्ड आइडेण्टिटि,* नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस

पालेग, इलाज (२००४), *''ट्रान्सफ़ोर्मिंग एथनिक ऑर्डर्स टु प्लुरलिस्ट रिजीम्स'',*आन्द्रियन गुएल्के (सं) कृत डिमॉक्रसी एण्ड एथनिक कॉन्लिक्ट : एडवान्सिंग पीस इन डीपली डिवाइडिंग सोसाइटि, पालग्रेव मैकमिलन, न्यूयार्क

ठाकुर, रमेश एवं ओदी विजें (२००४), *साउथ एशिया इन द वर्ल्ड: प्रॉब्लम सोल्विंग पर्सपैक्टिव्ज़ ऑन सिक्युरिटी, सस्टेनेब्ल डिवैलॅपमण्ट, एण्ड गुड गवर्नैंस,*टोक्यो, यून.एन.यू. प्रैस।

२०.८ बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नों १

१) बहुवाद का अर्थ है – लोगों के बीच बहुलता की विद्यमानता, जो कि समाज में धर्म, भाषा, संस्कृति, परम्पराओं, रीति-रिवाजों, आदि पर आधारित होती है। यह विविधता से भिन्न होती है। जबकि परवर्ती भिन्नताओं के वजूद की ओर इशारा करती है, बहुवाद राजनीतिक अधिकारों के साथ ही भिन्नताओं का अस्तित्व होने की ओर संकेत करता है।

२) दक्षिण एशिया के सभी देश भाषा, धर्म, संस्कृति, रीति-रिवाजों, परम्पराओं, आदि के आधार पर सामाजिक समूहों के बीच समाज में दरारों से घिरे हैं। राजनीतिक अभिजात वर्ग उन्हें अपने लाभ के लिए इच्छानुकूल कर लेते हैं, जो लोगों के अधिकारों तथा लोकतंत्रा को भारी हानिहुँचाता है।

बोध प्रश्न २

१) दक्षिण एशियाई देशों ने बहुवाद की चुनौतियों का सामना करने के लिए मुख्य रूप से दमनकारी और समंजनकारी साधन अपनाये हैं।

२) दो मॉडल हैं – उदारवादी और मित्रातावादी।